HOW DID WE FIND OUT ABOUT ?

हमें प्लूटो के बारे में कैसे पता चला?

आइसक एसिमोव

हिन्दी अनुवाद:
अरविन्द गुप्ता

ISAAC ASIMOV

हमें प्लूटो के बारे में कैसे पता चला?

आइसक एसिमोव

हिन्दी अनुवाद: अरविन्द गुप्ता

खगोलशास्त्रियों के सामने एक समस्या थी: सूर्य से दूरी पर सातवें ग्रह - यूरैनस की कक्षा में कुछ गड़बड़ी थी। उसके बाद आठवें ग्रह - नेपच्यून की खोज हुई। पर यूरैनस की कक्षा मं गड़बड़ी बरकरार रही। क्या सौर-मंडल के विस्तार में कोई और ग्रह छिपा हुआ था - और क्या वो ग्रह यूरैनस की कक्षा पर प्रभाव डाल रहा था?

पहले प्रश्न का उत्तर 1930 में मिला। इलिनौय, अमरीका के क्लाइड टामबौग नामक एक किसान लड़के की खगोलशास्त्र में गहरी रुचि थो। उसने हजारों फोटोग्राफ्कि-प्लेट्स पर आकाशीय पिंडों का मुआयना करने के बाद एक नया छोटा ग्रह खोजा था।

टामबौग द्वारा खोजे ग्रह का नाम था प्लूटो। प्लूटो की खोज बहुत मुश्किल से ही हो पायी। खगोलशास्त्रियों को प्लूटो का व्यास कुछ शुद्धता से मापने में पचास साल लगे। और आज भी हमें उसका वास्तविक व्यास नहीं पता है। प्लूटो का चंद्रमा - 'चैरान' खोजने में भी बहुत वक्त लगा। कुछ खगोलशास्त्रियों ने 'चैरान' के चंद्रमा होने पर भी शंका जाहिर की। उन्हें लगा कि 'चैरान' और प्लूटो मिलकर एक डबल-ग्रह (डबल-प्लैनेट) होंगे।

खगोलशास्त्रियों को दूसरे प्रश्न का संतुष्टिपूर्ण उत्तर अभी तक नहीं मिला है। प्लूटो-ग्रह, यूरैनिस की कक्षा को प्रभावित नहीं करता है और इसलिए अब खगोलशास्त्री सौर-मंडल की गहराईयों में दसवें ग्रह की तलाश कर रहे हैं।

इसमें से क्या नया निकलेगा यह किसी को नहीं पता। पर जो भी परिणाम निकलेगा वो प्लूटो और चैरान जैसा ही आश्चर्यजनक होगा। यह भी सम्भव है कि बरसों तक कोई परिणाम ही न निकले।

और यह भी सम्भव है कि कल ही कुछ नतीजे निकल आएं।

1. यूरैनस और नेपच्यून

यूरैनस ग्रह सूर्य से सातवां ग्रह है। वो सूर्य से 178-करोड़ मील दूर है। यानि सूर्य से पृथ्वी जितनी दूर है यूरैनस उससे 19-गुना अधिक दूर है। यूरैनस को सूर्य की परिक्रमा लगाने में 84-साल लगते हैं।

यूरैनस की खोज 1781 में हुई और उसके बाद से खगोलशास्त्रियों ने उसका गहन अध्ययन किया। उनके अनुसार यूरैनस को सूर्य की परिक्रमा ब्रिटिश वैज्ञानिक आइजक न्यूटन (1642-1727) के गुरुत्वाकर्षण नियमों के अनुसार लगानी चाहिए थी। इस नियम के अनुसार सूर्य, यूरैनस को बहुत प्रबल गुरुत्वाकर्षण बल से खींचेगा। यह बल सूर्य और यूरैनस के माप और उनके बीच की दूरी पर निर्भर करेगा।

बृहस्पति और शनि दोनों विशाल ग्रह हैं और दोनों यूरैनस के पास हैं। वो भी अपना गुरुत्वाकर्षण बल यूरैनस पर लगाएंगे।

अगर सूर्य, बृहस्पति और शनि तीनों के गुरुत्वाकर्षण बल को मद्देनजर रखा जाए तो यूरैनस को सूर्य के चारों ओर एक विशिष्ट कक्षा में घूमना चाहिए था। पृथ्वी से देखते समय यूरैनस को एक नियमित पथ पर यात्रा करना चाहिए था। खगोलशास्त्री हर रात वो पथ क्या होगा उसकी भविष्यवाणी कर सकते थे।

पर असल में ऐसा हुआ नहीं। समय के साथ वैज्ञानिकों द्वारा गणना की हुई स्थिति से यूरैनस हट गया। साधारण लोगों को इससे कुछ खास फर्क नहीं पड़ता पर खगोलशास्त्रियों के लिए यह एक दिल दहलाने वाली बात थी। इसका मतलब यह भी हो सकता था कि न्यूटन के सिद्धांत गलत थे। और अगर यह बात थी तो फिर पूरे खगोल विज्ञान पर ही प्रश्नचिन्ह लग जाता।

फिर खगोलशास्त्रियों को लगा कि शायद वो गुरुत्व के सभी खिंचावों को अपनी गणना में शामिल नहीं कर रहे हों। शायद यूरैनस के आगे कोई और ग्रह हो जिसे अभी तक खोजा न गया हो। शायद वो ग्रह यूरैनस को खींच रहा हो और उससे उसकी स्थिति बदली हो और वो खगोलशास्त्रियों को परेशान कर रही हो।

दो खगोलशास्त्रियों ने उस लापता ग्रह की स्थिति पता करने की कोशिश की जिससे कि यूरैनस की कक्षा में गलती को समझा जा सके। उनमें से एक ब्रिटिश खगोलशास्त्री थे - जान काउच एडम्स (1819-1892) और दूसरे फ्रेंच खगोलशास्त्री थे - उरबेन जीन जोजेफ लुविरे (1811-1877)। दोनों ने इस समस्या पर अलग-अलग काम किया। उन्हें पता नहीं था कि कोई और भी उस समस्या को सुलझा रहा है।

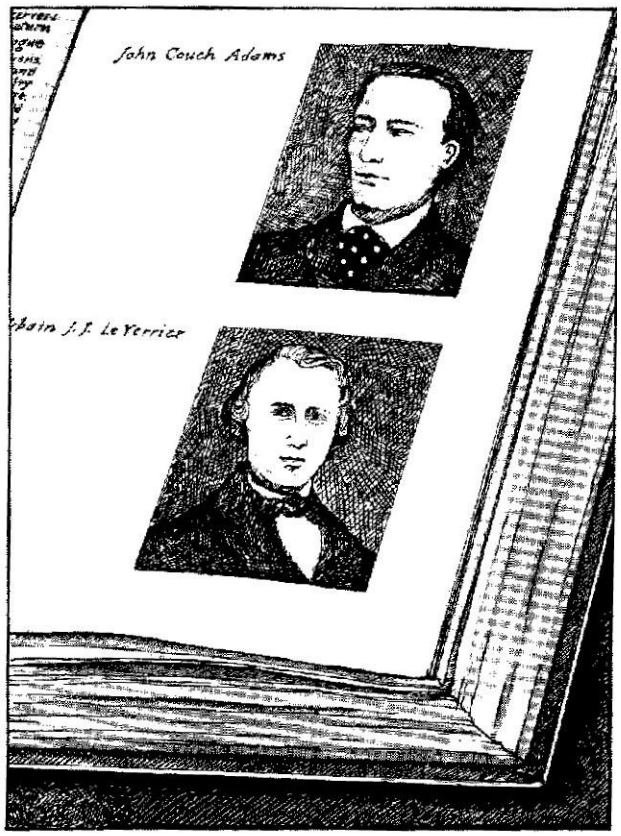

जान काउच एडम्स और उरबेन जीन जोजेफ लुविरे ने नेपच्यून ग्रह की खोज में अहम रोल अदा किया। दोनों ने आसमान में ग्रह की स्थिति की सही भविष्यवाणी की।

समस्या काफी मुश्किल थी। एडम्स और लुविरे दोनों पहुंचे हुए और काबिल गणितज्ञ थे। 1845 में एडम्स को हल मिला। और अगल वर्ष लुविरे को भी समस्या का हल मिला। यूरैनस की कक्षा में गड़बड़ी के लिए लापता ग्रह का आसमान पर एक विशिष्ट बिंदु पर होना जरूरी था।

खगोलशास्त्रियों को एडम्स और लुविरे द्वारा सुझाए आसमान के क्षेत्र में लापता ग्रह को खोजने में कुछ समय लगा। फिर 23 सितम्बर 1846 को दो जर्मन खगोलशास्त्रियों जोहान गौटीफ्राइड गैले

(1812-1910)और हेनरिच लुडविग डाहरेह (1822-1875) ने उस सुझाए क्षेत्र का अध्ययन किया और एक घंटे के अंदर उन्हें नया ग्रह मिल गया।

खगोलशास्त्रियों ने इस नए ग्रह का नाम नेपच्यून रखा। वो दूरी के आधार पर सूर्य से आठवां ग्रह था। यह खोज गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत के लिए एक भारी विजय थी। क्योंकि न्यूटन के सिद्धांत के आधार पर दो खगोलशास्त्रियों ने नए ग्रह की आसमान में स्थिति की सही भविष्यवाणी की थी। और नया ग्रह उसी स्थान पर मिला भी।

नेपच्यून सर्य के करीब 279-करोड़ मील दूर है। यह पृथ्वी और सूर्य की दूरी से तीस-गुना अधिक है। नेपच्यून से सूर्य की दूरी ज्ञात होने के बाद उसकी कक्षा और यूरैनस पर उसके गुरुत्व के खिंचाव की गणना की जा सकती थी।

पर उससे भी पूरी तरह समस्या का निदान नहीं हुआ। क्योंकि उसक बावजूद यूरैनस की गति में गड़बड़ी को पूरी तरह नहीं समझा जा सका। वहां अभी भी कुछ गलती थी।

क्या नेपच्यून से आगे अन्य कोई ग्रह था? अगर ऐसा कोई ग्रह होता तो वो नेपच्यून की अपेक्षा यूरैनस से और भी दूर होता। तब यूरैनस पर उसके गुरुत्व का खिंचाव और भी कम होता। शायद इस ग्रह के गुरुत्व का खिंचाव यूरैनस की गुत्थी को सुलझा सके।

नेपच्यून से आगे का यह नया ग्रह शायद यूरैनस की अपेक्षा नेपच्यून के ज्यादा पास होगा। इसलिए उसका अधिक प्रभाव नेपच्यून पर होगा। फिर यूरैनस की थोड़ी गड़बड़ी से क्यों माथापच्ची करें? सिर्फ नेपच्यून की गति पर ध्यान दें।

पर इससे काम नहीं चला। जितनी अधिक बार कोई ग्रह, सूर्य की परिक्रमा लगाता है उतनी ही शुद्धता से खगोलशास्त्री उसकी गति में बारीक गल्तियों की गणना कर सकते हैं। यूरैनस की खोज 1781 में हुई। और 1846 में जब खगोलशास्त्री नेपच्यून की खोज कर रहे थे तब तक यूरैनस सूर्य की तीन-चौथाई परिक्रमा लगा चुका था और त्रुटि बिल्कुल स्पष्ट हो गई थी। 1900 तक वो सूर्य

की 2/5 परिक्रमा लगा चुका था और तब तक उसकी गति में त्रुटि को अच्छी तरह मापा जा चुका था।

नेपच्यून की खोज 1846 में हुई थी आर उसे सूर्य की परिक्रमा लगाने में 165 साल लगते थे। 1900 तक नेपच्यून ने सूर्य की केवल 1/3 परिक्रमा ही लगाई थी। इसलिए यूरैनस की छोटी त्रुटियों पर विश्वास करना बेहतर था क्योंकि हो सकता था कि नेपच्यून की त्रुटियां उससे कहीं अधिक हों।

उसके बावजूद बहुत कम खगोलशास्त्रियों को ही नए ग्रह खोजने की बात जंची। इसके कई कारण थे।

पहले तो ग्रहों की 'चमक' की बात थी। प्राचीन काल से जिन ग्रहों के बारे में पता था वे सभी चमकीले थे और उन्हें आसानी से देखा जा सकता था। इनमें बुध, शुक्र, मंगल, बृहस्पति और शनि ग्रह शामिल थे। इनकी चमक पहली-श्रेणी के पिंडों की थी। शुक्र और बृहस्पति विशेषकर बहुत चमकीले थे। बहुत कम तारे ही इन ग्रहों जितने चमकीले थे और इस कारणवश यह चमकीले ग्रह काले आसमान में साफ छिटकते थे और आसानी से पहचान में आते थे।

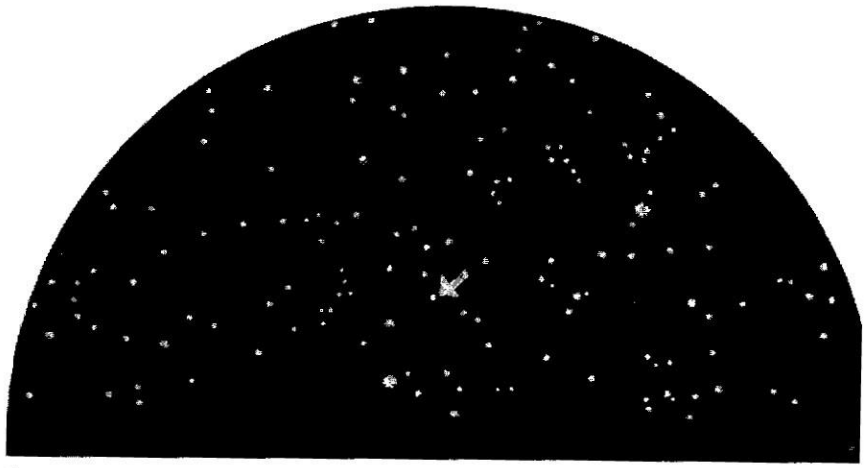

23 सितम्बर 1846 को दो जर्मन खलोगशास्त्रियों द्वारा खोज के समय नेपच्यून की आकाश में स्थिति।

धुंधले तारों की 'चमक' को श्रेणी-2, श्रेणी-3, श्रेणी-4 आदि में रखा जाता है। तारे की जितनी ऊंची (अधिक) श्रेणी होती है वो उतना ही अधिक धुंधला होता है। और जितनी ऊंची श्रेणी होती है उस श्रेणी में उतने ही अधिक तारे होते हैं। मिसाल के लिए श्रेणी-1 में सिर्फ 20 ग्रह और तारे होंगे। पर श्रेणी-5, और श्रेणी-6 में कम-से-कम 5000 तारे होंगे।

यूरैनस, शनि से दो-गुनी दूरी पर है और आकार में उससे कहीं छोटा है। उसके द्वारा फेंका हुआ प्रकाश बहुत कमजोर है क्योंकि उसकी 'प्रकाश' श्रेणी-5.5 है। उसे सिर्फ आंख से देख पाना मुश्किल है। क्योंकि यूरैनस उसी रोशनी के हजारों तारों से घिरा हुआ होगा इसलिए उसे अन्य ग्रहों के मुकाबले देखना मुश्किल होगा।

तारें क्योंकि पृथ्वी से बहुत दूर होते हैं इसलिए साल-दर-साल उनकी स्थित बरकरार और स्थिर रहती है। जबकि तारों की पृष्ठभूमि में ग्रह इधर-उधर विचरते रहते हैं। ग्रहों की इस गतिशीलता से उन्हें हजारों तारों के बीच में पहचाना जा सकता है। वैसे सूर्य से ग्रह जितनी अधिक दूरी पर होता है वो उतनी ही धीमी गति से चलता है। मिसाल के लिए यूरैनस इतनी धीमी गति से चलता है कि उसे खगोलशास्त्री की सधी आंख ही पहचान सकती है। यूरैनस इतना धुंधला है और इतनी धीमी गति से चलता है कि इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि उसकी खोज 1781 में ही हुई, जबकि बाकी ग्रहों के बारे में लोगों को प्राचीन काल से पता था।

क्योंकि नेपच्यून, यूरैनस से भी ज्यादा दूर है इसलिए वो और भी धुंधला है। उसकी 'चमक' की श्रेणी-7.8 है इसलिए उसे टेलिस्कोप के बिना देखा ही नहीं जा सकता है। नेपच्यून, यूरैनस से भी धीमी गति से घूमता है और वो हजारों समान चमक वाले तारों से घिरा है। इस वजह से यूरैनस की अपेक्षा नेपच्यून को खोजना ज्यादा मुश्किल काम है। इसी कारण 1846 तक नेपच्यून की खोज नहीं हुई।

नेपच्यून शायद तब भी नहीं खोजा जाता अगर एडम्स और लुविरे ने यूरैनस की कक्षा में त्रुटि से उसकी स्थिति की भविष्यवाणी न की होती।

अगर कोई ग्रह नेपच्यून से भी दूर होगा तो वो नेपच्यून से भी धुंधला होगा। उसकी गति भी अत्यन्त धीमी होगी और वो उसी चमक के हजारों-लाखों तारों से घिरा होगा। यूरैनस की गति में त्रुटि इतनी कम थी कि उसके लिए नए ग्रह की खोज एडम्स और लुविरे के काम से कहीं ज्यादा मुश्किल होता।

पर अब खगोलशास्त्री तारों के फोटो ले सकते थे जो एडम्स और लुविरे के काल में सम्भव नहीं था। फोटोग्राफ्स से काम निश्चित रूप से थोड़ा सरल हुआ पर अधिक नहीं। अधिकांश खगोलशास्त्रियों का मानना था कि नेपच्यून के आगे नए ग्रह की तलाश समय की बरबादी होगी और इस कारणवश इस दिशा में कोई प्रयास नहीं हुआ।

पर एक व्यक्ति लोकप्रिय मतों से अहसमत था। वो था पर्सीवल लावेल (1855-1916)। लावेल का जन्म बॉस्टन के एक रईस परिवार में हुआ था और उसने खूब धन कमाया था। वो एक कुशल गणितज्ञ भी था। वो शौकिया तौर पर खगोलशास्त्र में रुचि रखता था। उसकी मंगल ग्रह में विशेष रुचि थी।

2. पर्सीवल लावेल

1877 में इतालवी खगोलशास्त्री जियोवानी वर्जिनियो शेरपराली (1835-1910) ने मंगल ग्रह का अध्ययन किया था और मंगल पर जो चिन्ह दिखे थे उनका एक चित्र बनाया था। उसे लगा था कि गहरे रंग के चिन्ह शायद पानी होंगे और हल्के रंग के चिन्ह जमीन होगी। उसन गहरे रंग के चिन्हों को कुछ लम्बा और सकरा पाया और उसने उन्हें इतालवी में 'कैनाली' (अंग्रजी में चैनल) यानि 'नाली' का नाम दिया। नाली पानी की एक सकरी लम्बी पट्टी होती है जो पानी के दो स्रोत्रों को जोड़ने का काम करती है। इंग्लिश-चैनल - इंग्लैन्ड और फ्रांस को आपस में जोड़ता है। वो पृथ्वी पर चैनल का सबसे अच्छा उदाहरण है।

पर अंग्रेजी में उस शब्द का अनुवाद 'कैनाल' हुआ। यह कुछ दुभाग्यपूर्ण है क्योंकि कैनाल का मतलब मनुष्यों द्वारा खोदी नहरें होता है। इस कारण जब अंग्रेजी भाषी लोगों ने सुना कि मंगल पर 'कैनाल' हैं तो उन्हें तत्काल लगा कि वहां पर सोचने वाले मनुष्य भी होंगे। क्योंकि मंगल ग्रह, पृथ्वी से छोटा था

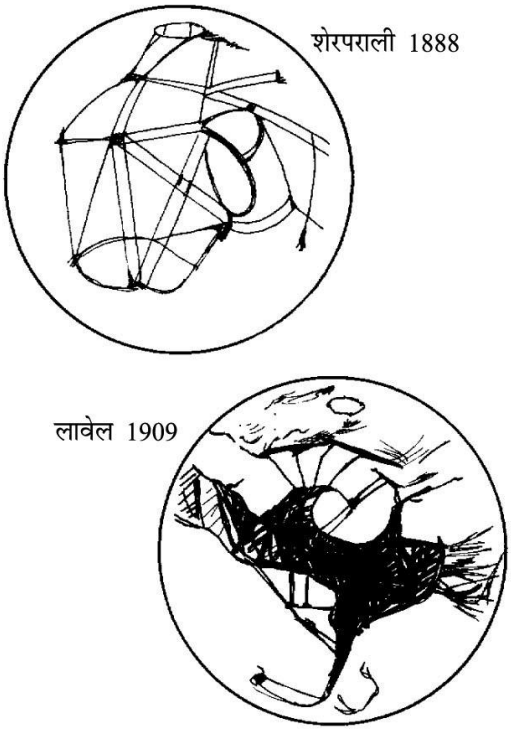

जियोवानी शेरपराली और पर्सिवेल लावेल द्वारा बनाए मंगल ग्रह के नक्शे। शेरपराली को सीधी रेखाएं 'चैनल' लगीं और लावेल को वो नहरें लगीं।

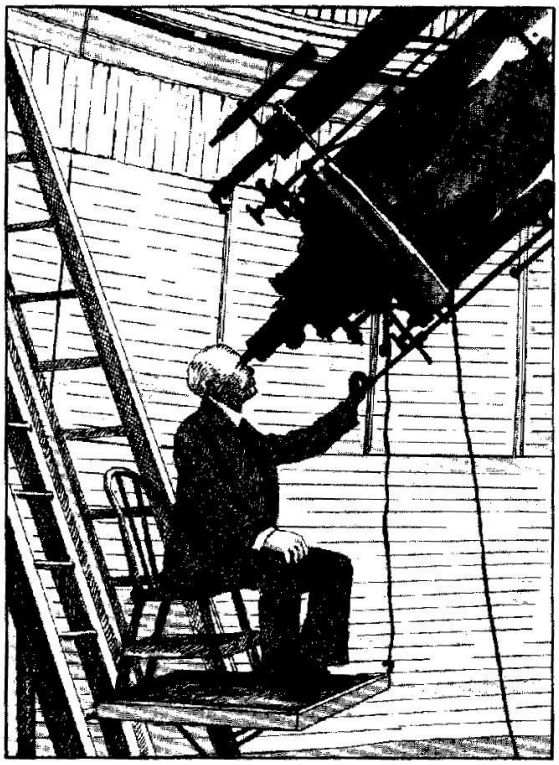

इसलिए उसका गुरुत्वाकर्षण बल पृथ्वी का केवल 2/5 था। इस कारण से भी मंगल लम्बे काल तक अपने पानी को रोक नहीं सका होगा।

इसीलिए मंगल सूख रहा होगा और फिर वहां पानी के लिए लोगों ने नहरे खोदी होंगी। वहां पर लोग पिघली ध्रुवीय बर्फ को पानी जैसे लाकर मंगल के गर्म क्षेत्रों में फसलें पैदा करते होंगे।

लावेल की मंगल की नहरों में बेहद रुचि थी। उसने उन्हें गहराई से समझने का अपना मन बनाया। उसने अपने अपार धन से फ्लैगस्टाफ, एरिजोना में एक निजी वेधशाला स्थापित की। वो स्थान रेगिस्तान में, ऊंचाई पर और शहर से दूर था यानि वहां रात्रि-आकाश एकदम स्पष्ट दिखता था। लावेल की प्रयोगशाला 1894 में शुरू हुई।

पंद्रह साल तक लावेल ने मंगल का गहन अध्ययन किया और इस दौरान उसने हजारों फोटोग्राफ्स लिए। वो शेरपराली की अपेक्षा मंगल

को बहुत अच्छे तरीके से देख पाया। उसने मंगल के बहुत विस्तृत चित्र बनाए जिनमें 500 से ज्यादा 'कैनाल' अंकित थे। 'कैनाल' सीधी रेखाओं में जाते और एक-दूसरे को काटते भी थे। काटने के स्थानों पर गहरे रंग के क्षेत्र थोड़े चौड़े हो जाते थे। लावेल ने उन्हें 'ओएसिस' नाम दिया।

कभी-कभी कैनाल दोहरे हो जाते थे। उनमें मंगल ग्रह के मौसम में बदल के साथ-साथ परिवर्तन भी आता था।

लावेल ने इस विषय पर भाषण दिए और लोकप्रिय पुस्तकें भी लिखीं। उसे लगा कि मंगल पर जरूर होशियार जीव रहते होंगे। इसके नतीजतन ब्रिटिश लेखक हरबर्ट जार्ज (एच जी) वेल्स (1866-1946) ने एक पुस्तक लिखी 'द वार ऑफ द वर्ल्डस' जिसमें उन्होंने मंगलवासियों द्वारा पृथ्वी पर आक्रमण की बात कही। इससे मंगल पर कृत्रिम और खतरनाक जीवन होने की धारणा और प्रचलित हुई।

बहुत कम खगोलशास्त्रियों ने लावेल द्वारा देखे मंगल के कैनाल्स को देखा। पर इससे लावेल पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वो बस यह दलील देता - मेरी आंखें ज्यादा पैनी हैं, मेरे टेलिस्कोप बेहतर हैं और वेधशाला आधुनिक है।

पर लावेल की बात एकदम गलत निकली। अब हमें पता है कि मंगल पर कोई नहरें नहीं हैं। 1960 से हमने मंगल पर मनुष्यहीन अंतरिक्ष यान भेजे हैं और उनसे हमें मंगल का एक विस्तृत नक्शा मिला है। वहां उन्हें नहरों और जीवन का कोई चिन्ह नहीं मिला। शायद लावेल को वहां की चीजें स्पष्टता से नहीं दिख रही थीं और वो दृष्टिभ्रम का शिकार हुआ था। जब आंखों पर ज्यादा तनाव होता है तो लोगों को अक्सर अनियमित काली रेखाएं दिखाई देती हैं।

इतना अवश्य था कि लावेल मुश्किल काम हाथ में लेने से डरता नहीं था। जिन विषयों से अन्य खगोलशास्त्री घबराते थे उन्हें लावेल सहर्ष स्वीकारता था।

1902 के बाद से लावेल की रुचि नेपच्यून से भी दूर के ग्रह को खोजने में जागी। 1905 में उसने इस ग्रह की खोज शुरू की। इस काम को उसने बिल्कुल गुप्त रूप से किया जिससे कि अन्य खगोलशास्त्रियों को इसका पता न चले और

वो इस खोज में पहले सफलता हासिल करे। 1908 में वो इस दूर-दराज स्थित ग्रह को ग्रह-एक्स के नाम से बुलाने लगा।

पर लावेल को गुप्त तरीके से शोध करने का कुछ फायदा नहीं हुआ। एक अन्य रईस अमरीकी खगोलशास्त्री विलियम हेनरी पिकरिंग (1858-1938) की भी रुचि नेपच्यून से परे स्थित ग्रह को खोजने में थी। पिकरिंग ने बाहरी ग्रहों पर पहले भी कुछ शोध किए थे। 1898 में उसने शनि ग्रह के नवें उपग्रह की खोज की थी। यह उपग्रह अन्य उपग्रहों की अपेक्षा शनि से सबसे दूर था। फिकरिंग ने उसका नाम 'फियोबी' रखा।

पिकरिंग ने यूरैनस की गति में त्रुटि के आधार पर नेपच्यून के आगे के ग्रह को खोजने का प्रयास किया (उसने उसे ग्रह 'ओ' का नाम दिया।)। उसे लगा कि नेपच्यून से आगे का ग्रह सूर्य से 480-करोड़ मील दूर होगा। यानि वो नेपच्यून की तुलना में सूर्य से पौने-दो गुना ज्यादा दूर होगा। नए ग्रह को सूर्य की परिक्रमा लगाने में 373-साल लगेंगे। यह काल नेपच्यून की सूर्य परिक्रमा का सवा-दो गुना होगा। पिकरिंग को लगा कि नया ग्रह पृथ्वी से दो-गुना भारी होगा और उसकी 'चमक' 11 से 13-श्रेणी के बीच की होगी और वो समान चमक के हजारों-लाखों तारों से घिरा होगा।

1908 में पिकरिंग ने इन तथ्यों को लोगों के सामने रखा। जब लावेल ने उनके बारे में पढ़ा तो उसे यह अच्छा नहीं लगा और उसने खुद इन तथ्यों को परखने की सोची। लावेल ने भविष्यवाणी की कि नया ग्रह सूर्य से 440-करोड़ मील दूर होगा। यह आंकड़ा पिकरिंग द्वारा सुझाई दूरी से कुछ कम था। लावेल को लगा कि नया ग्रह 337-साल में सूर्य की परिक्रमा करेगा। यह आंकड़ा पिकरिंग से कम था। लावेल को नए ग्रह का भार पृथ्वी से 6-7 गुना ज्यादा लगा जो यूरैनस और नेपच्यून के भार का आधा था।

पिकरिंग ने आंकड़े पेश करने के बाद नए ग्रह को खोजने का कोई प्रयास नहीं किया। पर लावेल इस काम में मुस्तैदी से लगा रहा।

उसने एक बहुत विशाल काम से शुरुआत की। उसने उन परिस्थितियों में आकाश के फोटोग्राफ्स लिए जिससे 13-श्रेणी 'चमक' वाले तारे भी फोटो में दिखाई दें। एक ऐसे फोटोग्राफ में 10,000 तारे तक दिखते थे। वो कुछ दिनों बाद आकाश के उसी भाग का दुबारा फोटोग्राफ लेता था। उसमें धुंधले तारों की स्थिति तो वही रहती पर अगर उनमें कोई ग्रह होता तो 'गति' के कारण उसकी स्थिति थोड़ी सी जरूर बदलती।

फिर लावेल दोनों फोटोग्राफ्स का मैग्नीफाइंग ग्लास से आवर्धन कर उनकी तुलना करता। वो हरेक तारे को ध्यान से देखता। क्या उनमें से किसी में कुछ बदल दिखी? यह एक बेहद मुश्किल काम था और बार-बार असफलता का मुंह देखने के कारण 1912 में लावेल मानसिक तनाव से बीमार पड़ गया। पर तबियत ठीक होने के बाद लावेल फिर काम पर लग गया।

1916 में लावेल का पक्षाघात (स्ट्रोक) से देहान्त हुआ। उस समय तक वो नए ग्रह को नहीं खोज पाया था। मृत्यु के समय उसकी आयु केवल 61 वर्ष की थी और शायद अत्यधिक श्रम के कारण ही उसकी जल्दी मौत हुई थी।

अपने जीवन के अंतिम समय में उसने नए ग्रह को खोजने का एक बेहतर तरीका खोज निकाला था। इसमें 'ब्लिंक कौम्प्रेटोर' का उपयोग होता था। कार्ल ऑटो लैपलैन्ड (1873-1951) तब तक लावेल वेधशाला का संयुक्त निदेशक बना था और उसने लावेल से इस उपकरण को खरीदने को कहा था। यह उपकरण इस सिद्धांत पर काम करता है।

आकाश के एक विशेष भाग की दो फोटोग्राफ्कि प्लेट्स चंद दिनों के अंतराल पर ली जाती थीं। फिर इन दोनों प्लेट्स को 'ब्लिंक कौम्प्रेटोर' पर रखा जाता। उससे एक प्लेट पर प्रकाश पड़ता और वो उसे स्क्रीन पर प्रोजेक्ट होती। फिर उपकरण दूसरी प्लेट पर भी प्रकाश चमकाकर उसे भी स्क्रीन पर प्रोजेक्ट करता। 'ब्लिंक कौम्प्रेटोर' एक प्लेट से दूसरी, और फिर पहली प्लेट पर बहुत तेजी से 'स्विच' करता। अगर दोनों प्लेटों के बिम्ब स्क्रीन पर एक स्थान पर नहीं होते तो उन्हें एडजस्ट कर एक-दूसरे पर लाया जाता। अब जैसे-जैसे प्रकाश

एक-प्लेट से दूसरी प्लेट पर चमकता वैसे-वैसे स्क्रीन पर गतिहीन तारे चमकने लगते।

उनमें से कोई तारा अगर 'ग्रह' होता तो उस बीच उसकी स्थिति कुछ बदल गई होती और दोनों प्लेटों के प्रोजेक्शन के समय ग्रह की यह बदली स्थिति साफ नजर आती। अगर स्थित बहुत अधिक बदली होती तो शायद वो कोई 'उल्का' होती जो अधिक दूर नहीं होती। अगर कोई पिंड बहुत दूर स्थित होता तो उसकी स्थिति बहुत कम बदलती।

'ब्लिंक कौम्प्रेटोर' एक गजब का उपकरण था। क्योंकि उसकी मदद से फोटोग्राफ्कि प्लेट्स पर हजारों स्थिर तारों के बीच किसी बदलाव को पकड़ पाना आसान था। यह काम फोटोग्रैफ्स पर मैग्निफाइंग ग्लास द्वारा छिपे ग्रह को खोजने से बहुत आसान था।

परन्तु 'ब्लिंक कौम्प्रेटोर' की मदद से भी लावेल अपने जीवन में ग्रह-एक्स को नहीं खोज पाया।

3. प्लूटो की खोज

अपने वसीयतनामे में लावेल ने अपने एक सहायक अमरीकी खगोलशास्त्री वेस्टो मेल्विन स्लिफर (1875-1969) को ग्रह-एक्स के खोजने का कार्य सौंपा था। इसके लिए लावेल अपनी वेधशाला के लिए दस लाख डालर की धनराशि भी छोड़ गया था।

परन्तु लावेल की मृत्य् के बाद उसकी पत्नी इस राशि को लावेल वेधशाला को नहीं देना चाहती थी। वैसे लावेल अपनी पत्नी के लिए काफी धन छोड़ गया था परन्तु श्रीमती कांस्टेन्स लावेल और धन चाहती थीं और इसके लिए उन्होंने कोर्ट-कचहरी का सहारा भी लिया। इससे लावेल वेधशाला को धन भी कम मिला और भाग-दौड़ में बहुत समय भी व्यर्थ हुआ। 1927 में केस का फैसला

हुआ और उसके बाद ही लावेल वेधशाला के खगोलशास्त्री अपने काम पर लौट पाए।

उसके बाद वहां के खगोलशास्त्रियों को नए और आधुनिक टेलिस्कोप की जरूरत महसूस हुई। पर उनके पास उसे खरीदने लायक धन नहीं था। भाग्यवश लावेल का भाई भी धनी था और उसने नए टेलिस्कोप के लिए पैसे दिए। 1929 में नए टेलिस्कोप की स्थापना हुई।

उसके बाद एक ऐसे व्यक्ति की जरूरत थी जो नए टेलिस्कोप से आकाश के फोटो लेकर उन्हें 'ब्लिंक कौम्प्रेटोर' से देखकर ग्रह-एक्स की तलाश करे। यह बड़ा मुश्किल तमाम और कठिनाईयों से भरा काम था और लावेल वेधशाला का कोई खगोलशास्त्री इस काम को नहीं करना चाहता था। हरेक खगोलशास्त्री अपने काम में दक्ष और विशेषज्ञ था इसलिए कोई इस छोटे काम को छूना नहीं चाहता था। इसके लिए एक ऐसे व्यक्ति की जरूरत थी जो चाहें विशेषज्ञ न हो पर जिसमें उमंग हो और काम करने की लगन और धैर्य हो।

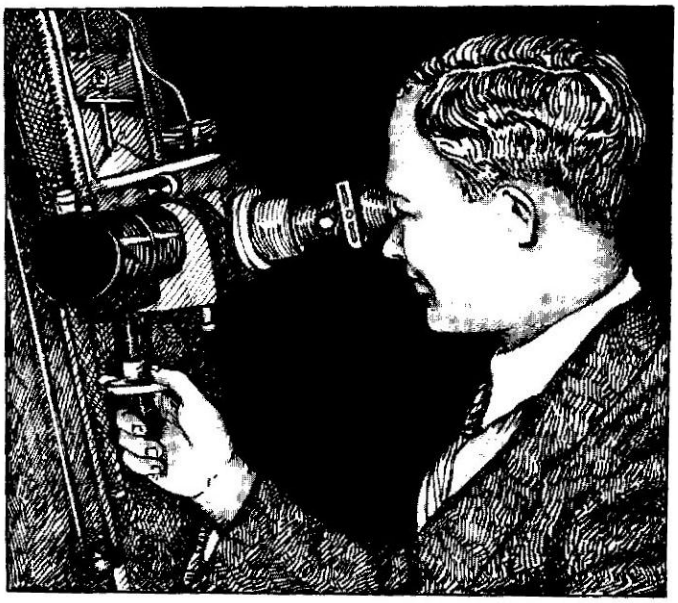

प्लूटो ग्रह का खोजकर्ता क्लाईड टामबौग,
'ब्लिंक कौम्प्रेटोर' पर कार्यरत

इस कार्य को करने के लिए आखिर एक सही व्यक्ति मिला - क्लाईड विलियम टामबौग (जन्म 1906)। वो इलिनौय के एक गरीब परिवार से था। परिवार उसके कालेज का खर्च वहन करने में असमर्थ था। इसलिए उसने केवल हाई स्कूल तक ही पढ़ाई की। लेकिन उसे खगोलशास्त्र का बेहद शौक था और उसने अपने पिता की खेती की पुरानी मशीनों के पुर्जों को जोड़-तोड़ कर तीन टेलिस्कोप बनाए थे जिनका वो नियमित उपयोग करता था।

1928 में टामबौग ने लावेल वेधशाला को एक पत्र लिखा और साथ में उसने खुद किए अवलोकनों के चित्र भी भेजे। स्लिफर को वे बेहद पसंद आए। टामबौग के पास उच्च डिग्री नहीं थी पर इससे स्लिफर को कोई फर्क नहीं पड़ा। टामबौग का काम था लगातार 'ब्लिंक कौम्प्रेटोर' को देखना।

1929 में टामबौग, लावेल वेधशाला में आया। वेधशाला ने उसे जो भी काम सौंपा उसने उसे सहर्ष स्वीकारा। उसने प्रोजेक्ट पर काम करना शुरू किया। कुछ लोगों ने उसे मदद की दिलासा दी थी पर बाद में वे सब अपने-अपने कामों में व्यस्त हो गए।

इसलिए टामबौग ने अकेले काम शुरू किया और 'ब्लिंक कौम्प्रेटोर' को बेहतर बनाने का प्रयास किया। हर फोटोग्राफ में औसतन 1,60,000 तारे होते थे। आकाश के कुछ भाग इतने सघन थे कि वहां हरेक प्लेट में करोड़ों तारे होते थे। खोज के दौरान उसे तमाम 'उल्काएं' भी मिलीं जिनकी स्थिति तेजी से बदलती रहती थी। पर उसकी उनमें कोई रुचि नहीं थी। उसकी तलाश ऐसे पिंड की थी जिसकी स्थिति में बदल बहुत कम हो, क्योंकि किसी भी दूर स्थित ग्रह में ऐसी ही बदल होती। महीनों के परिश्रम के बावजूद उसे किसी पिंड में ऐसी सूक्ष्म बदल नहीं दिखाई दी।

अपने काम कर असफलता से टामबौग उतना निराश नहीं था जितना साथी खगोलशास्त्रियों की टिप्पणियों से। हर मेहमान बाकी लावेल वेधशाला के काम की तारीफ करता पर टामबौग के काम की मजाक उड़ाता। वो टामबौग के मुंह पर साफ कहते कि उसे इस काम में कभी सफलता नहीं मिलेगी।

पर टामबौग अपने काम में निष्ठा से लगा रहा और 18 फरवरी 1930 को वो जिस सूक्ष्म बदल (ब्लिंक) को तलाश रहा था वो उसे मिली। छह दिनों के अंतराल में ली गई दो फोटोग्राफ्स में एक धुंधले तारे की स्थित थोड़ी सी बदली हुई दिखी।

पैंतालिस मिनट तक टामबौग उन फोटोग्राफ्कि प्लेट्स को निहारता रहा। वो जो कुछ देख रहा था उसे उस पर यकीन नहीं हो रहा था। फिर उसने लैम्पलैन्ड

को बुलाया जिसने उन बिम्बों को बहुत ध्यान से देखा। उसके बाद उसने स्लिफर को बुलाया। गहरे अध्ययन के बाद लैम्पलैन्ड और स्लिफर दोनों को लगा कि टामबौग ने ग्रह-एक्स को खोज निकाला था।

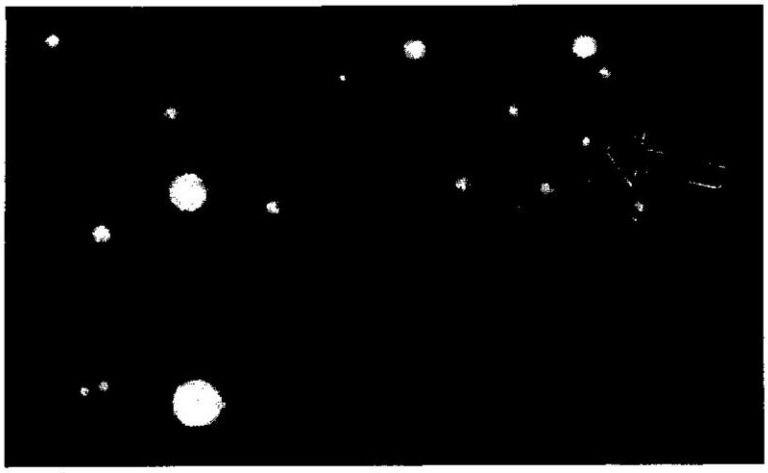

जनवरी 23, 1930

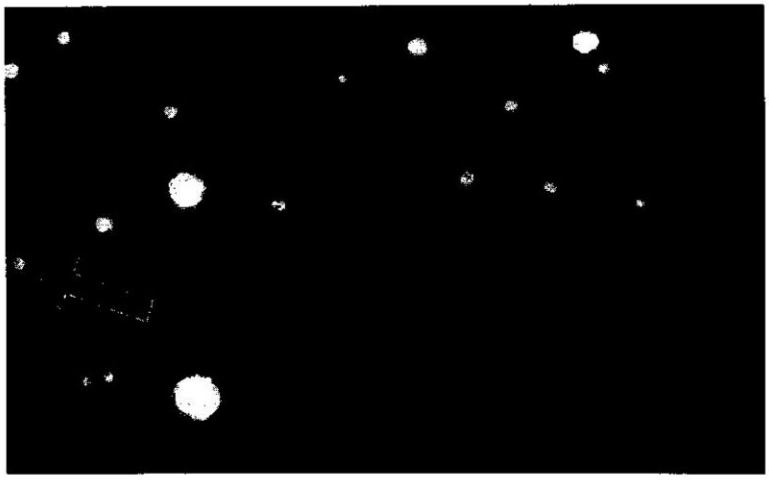

जनवरी 29, 1930

टामबौग ने प्लूटो की खोज की। इसके लिए उसने आकाश की दो फोटोग्राफ्स को एक-दूसरे पर ब्लिंक किया। दूसरी फोटो में प्लूटो की स्थिति बदली थी। कल्पना करें हजारों तारों वाली फोटोग्राफ्कि प्लेट्स की तुलना का काम। यह बेहद मुश्किल काम था।

पर तब भी उन तीनों ने इस खोज का सार्वजनिक खुलासा नहीं किया। वो उस ग्रह की कक्षा और गति का अध्ययन करना चाहते थे। उनकी खोज सही है या नहीं वे यह सुनिश्चित करना चाहते थे। वैसे भी वो खोज का खुलासा एक विशेष दिन - 13 मार्च को करना चाहते थे, क्योंकि वो पर्सिवल लावेल का जन्मदिन था। अगर 14 वर्ष पूर्व उसका देहान्त न हुआ होता तो यह लावेल का 75वां जन्मदिन होता। उन्होंने उस शुभ दिन अपनी खोज का सार्वजनिक खुलासा किया।

नए ग्रह का नाम क्या हो? यूरैनस की खोज के बाद कुछ लोग नए ग्रह को उसके खोजकर्ता के नाम पर 'हरशिल' बुलाना चाहते थे। इसी प्रकार नेपच्यून के

खोजकर्ता के नाम पर कुछ लोग उसे 'लुविरे' बुलाना चाहते थे। पर इनमें से कोई भी नाम नहीं जमा। इसलिए खगोलशास्त्रियों ने प्राचीन मिथकों का सहारा लिया।

श्रीमती लावेल ने नए ग्रह को अपने पति के नाम 'पर्सिवल' या फिर खुद अपने नाम पर 'कांस्टेंस' रखने का सुझाव दिया। पर इन सुझावों का तत्काल विरोध हुआ। स्लिफर ने प्राचीन मिथकों पर आधारित नाम रखने की हिमायत की। उसने नए ग्रह का नाम 'मिनरवा' सुझाया।

अंत में एक ग्यारह वर्षीय ब्रिटिश लड़की विनेशिया बर्नी ने 'प्लूटो' नाम सुझाया। यह नाम सबको उपयुक्त लगा। यूनानी मिथकों में प्लूटो 'अंधकार के भगवान' का नाम है। और क्योंकि नया ग्रह, सूर्य से इतना अधिक दूर था इसलिए वो अंधकार में ही पाया गया था। इस कारण से भी नाम उपयुक्त था। एक अन्य कारण भी था। अंग्रेजी भाषा में प्लूटो के पहले दो अक्षर 'पी' एवं 'एल' लावेल वेधशाला के संस्थापक पर्सिवल लावेल के नाम के अक्षर थे। इसलिए नए ग्रह का नाम 'प्लूटो' पड़ा।

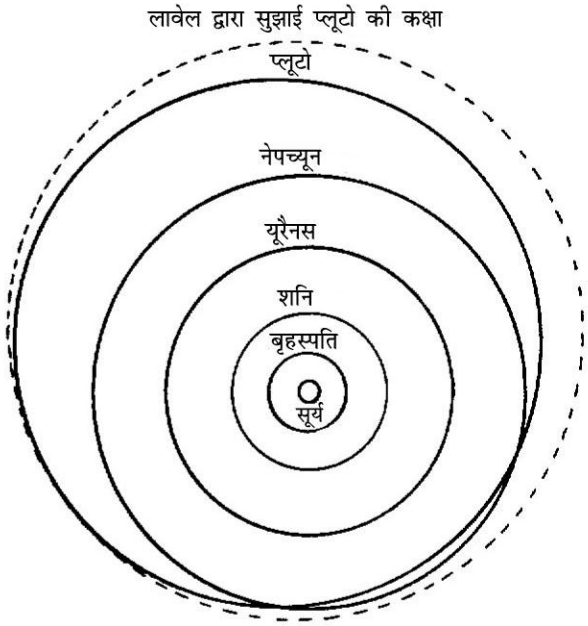

प्लूटो की वास्तविक कक्षा, लावेल द्वारा सुझाई प्लूटो की कक्षा से कुछ भिन्न थी।

समय के साथ-साथ प्लूटो की कक्षा की गणना की गई। वो सूर्य से 3672-मिलियन मील दूर था, जो लावेल और पिकरिंग द्वारा सुझाई दूरी से कम थी। प्लूटो, सूर्य की एक परिक्रमा 248-सालों में लगाता था जो लावेल और पिकरिंग द्वारा सुझाए काल से कम थी। 1930 में जब प्लूटो की खोज हुई तब आकाश में उसकी स्थित पिकरिंग और लावेल द्वारा सुझाई स्थितियों में से लावेल के अनुमान के नजदीक निकली।

एक अमरीकी खगोलशास्त्री मिल्टन ला सल्ले हुमासन (1891-1972) ने नए ग्रह को पिकरिंग की दूरी और स्थिति के आधार पर खोजने की चेष्टा की। वो उसमें सफल नहीं हुआ। पर प्लूटो की खोज के बाद हुमासन को लगा कि उसन आसमान के उसी क्षेत्र के फोटो लिए थे। फिर वो नए ग्रह को पहचानने में असफल क्यों हुआ?

हुमासन ने जब दुबारा उन फोटोग्राफ्स को देखा तो उसे दो प्लेट्स में प्लूटो नजर आया। पर एक बार पास के चमकीले तारे ने प्लूटो को ओंझल कर दिया। दूसरी बार प्लूटो का बिम्ब प्लेट में एक त्रुटिपूर्ण स्थान पर पड़ा और तभी वो दिखाई नहीं पड़ा।

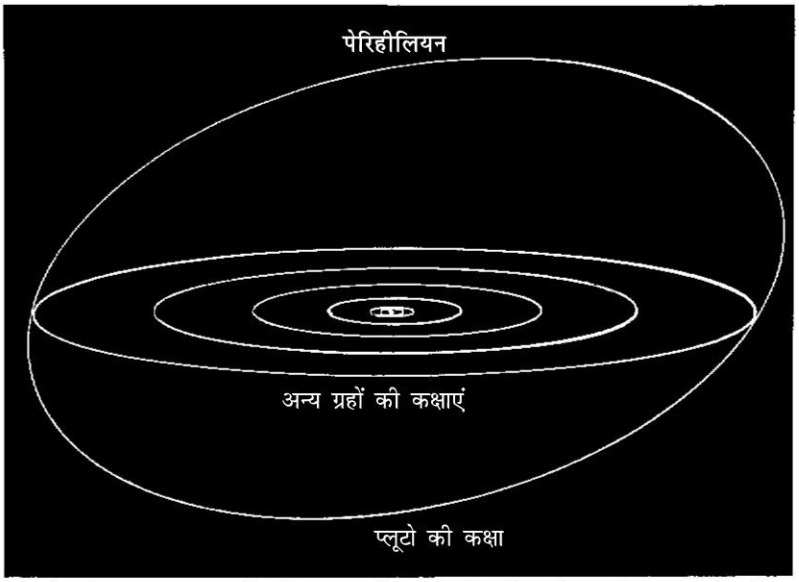

प्लूटो की कक्षा अन्य ग्रहों की तुलना में झुकी थी और वो काफी चपटी भी थी।

प्लूटो की कक्षा कई मायनों में काफी ताज्जुब में डालने वाली थी। प्लूटो की खोज से पहले ग्रहों की गति के आधार पर सौर-मंडल को चपटा समझा जाता था। सभी जाने-माने ग्रह सूर्य की एक ही सपाट प्लेन में परिक्रमा लगाते थे। अगर कोई सौर-मंडल का एक 1-फुट का छोटा स्केल मॉडल बनाता तो वो एक पिज्जा के डिब्बे में आसानी से फिट हो जाता।

पर प्लूटो की कक्षा दूसरे प्लेन में थी। वो अन्य ग्रहों की तुलना में 17-डिग्री झुकी हुई थी। इससे उसका एक सिरा पिज्जा डिब्बे के ऊपर होता और दूसरा डिब्बा पिज्जा डिब्बे के नीचे होता।

दूसरे, प्लूटो की कक्षा अन्य ग्रहों की तुलना में अधिक चपटी थी। अन्य ग्रहों की कक्षाएं लगभग गोल थीं पर प्लूटो की कक्षा काफी अंडाकार थी। एक सिरे

पर वो सूर्य से 460-करोड़ मील दूर था, तो दूसरे सिरे पर वो सूर्य से केवल 270-करोड़ मील दूर था।

जब प्लूटो सूर्य के सबसे नजदीक होता है तो इस स्थिति को पेरिहीलियन कहते हैं। 'पेरिहीलियन' एक यूनानी शब्द है जिसका मतलब होता है - 'सूर्य के पास' होना। इस स्थिति में प्लूटो, नेपच्यून की तुलना में सूर्य के 6-करोड़ मील अधिक पास होता है।

अगर आप एक कागज पर प्लूटो और नेपच्यून की कक्षाओं के चित्र बनाएं तो प्लूटो की कक्षा एक सिरे पर नेपच्यून की कक्षा को काटेगी। पर इससे घबराने की कोई बात नहीं है, क्योंकि प्लूटो और नेपच्यून कभी भी एक-दूसरे से नहीं टकराएंगे। क्योंकि प्लूटो की कक्षा झुकी है इसलिए क्रासिंग के समय प्लूटो, नेपच्यून की कक्षा से बहुत नीचे होगा।

प्लूटो और नेपच्यून कभी भी एक-दूसरे के 155-करोड़ मील से ज्यादा नजदीक नहीं आते हैं।

जब प्लूटो खोजा गया था तो वो अपनी 'पेरिहीलियन' की ओर बढ़ रहा था। 1979 में वो सूर्य से नेपच्यून जितना ही दूर था और उसके बाद वो सूर्य के थोड़ा नजदीक आया। फिर वो अगले बीस साल तक इसी स्थिति में सूर्य के पास रहेगा। 1990 में प्लूटो अपने 'पेरिहीलियन' पर होगा। तब वो सूर्य के सबसे नजदीक होगा।

1999 में प्लूटो, नेपच्यून की तुलना में सूर्य से दूर होगा और फिर अगले 229-सालों तक वो नेपच्यून की तुलना में सूर्य से दूर रहेगा।

4. प्लूटो का माप

प्लूटो की खोज ने तुरन्त एक समस्या पैदा कर दी। लावेल जिस ग्रह की खोज कर रहा था उसका बहुत विशाल होना जरूरी था तभी वो यूरैनस के गुरुत्वाकर्षण बल पर कुछ प्रभाव डाल पाता।

लावेल का मानना था कि नया ग्रह बृहस्पति, शनि, नेपच्यून और यूरैनस जितना बड़ा होगा। वैसे हम सूर्य से जितना दूर जाते हैं वैसे-वैसे बड़े ग्रह छोटे होते जाते हैं। बृहस्पति इनमें सबसे विशाल ग्रह है। उसका भार पृथ्वी से 318-गुना ज्यादा है। जबकि शनि थोड़ा छोटा है और उसका भार पृथ्वी से 95-गुना अधिक है। यूरैनस और नेपच्यून का भार पृथ्वी से 14.5-गुना और पृथ्वी से 17.2-गुना अधिक है। लावेल की गणना के अनुसार नए ग्रह का भार पृथ्वी का 6.6-गुना होना चाहिए था। पर अगर वो पृथ्वी का 10-गुना भी होता तो उसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। अन्य शब्दों में नए ग्रह का भार नेपच्यून के भार का 1/3 या 1/2 होना चाहिए था।

अब नेपच्यून की चमक 7.8-श्रेणी की है। अगर वो दूर होता और उसकी सूर्य से औसतन दूरी प्लूटो जितनी होती तो वो धुंधला होता और उसकी चमक 9-श्रेणी की होती। अगर प्लूटो का नेपच्यून के भार का 1/3 या 1/2 होता तो उसकी चमक 10 या 11-श्रेणी की होती।

पर प्लूटो की खोज के तुरन्त बाद खगोलशास्त्रियों ने उसकी चमक को 15-श्रेणी का मापा। वास्तविकता में नया ग्रह लावेल के अनुमान से 1/40 गुना धुंधला था। नए ग्रह की खोज में दिक्कत आने का यह एक मुख्य कारण था।

प्लूटो के धुंधले होने के तीन मुख्य कारण थे:

1 प्लूटो अनुमान से कहीं अधिक दूर था।

2 प्लूटो अनुमान से कहीं ज्यादा गहरे रंग के पदार्थ का बना था।

3 शायद प्लूटो अपेक्षा से छोटा था।

शायद वास्तविकता ऊपर की तीनों सम्भावनाओं का कोई मिश्रण भी हो सकती थी।

पहली सम्भावना को तुरन्त नकारा जा सकता है। प्लूटो की सूर्य से दूरी को प्लूटो को गति से ज्ञात किया जा सकता है। प्लूटो को गति को आकाश में उसके भटकने की चाल से मालूम किया जा सकता है। अब प्लूटो की दूरी और स्पीड दोनो निर्विवाद थीं। और क्योंकि प्लूटो की सूर्य से दूरी लावेल द्वारा सुझाई दूरी के कुछ पास थी इसलिए उसे कुछ अधिक चमकदार होना चाहिए था - धुंधला नहीं।

क्या प्लूटो किसी गहरे रंग के पदार्थ का बना था जो बहुत कम प्रकाश प्रतिबिम्बित करता हो? बड़े ग्रहों - बृहस्पति, शनि, यूरैनस और नेपच्यून गहरे बादलों के वातावरण से ढंके थे। बादल अपने ऊपर पड़ने वाले लगभग आधे प्रकाश को प्रतिबिम्बित करते हैं। अगर प्लूटो, पृथ्वी से बड़ा होता तो उसके भी बादल आधे से अधिक प्रकाश को प्रतिबिम्बित करते। प्लूटो का एक साथ बड़ा और काला होना असम्भव था।

इसके बाद सिर्फ तीसरी सम्भावना ही बचती थी - कि प्लूटो लावेल द्वारा सुझाए माप से बहुत छोटा था। वो शायद पृथ्वी से भी छोटा हो और वातावरण के पतले कवच के कारण वो अपने ऊपर पड़ने वाले प्रकाश को ज्यादा प्रतिबिम्बित न कर पाता हो। शायद यही उसके धुंधलेपन का राज हो।

अगर प्लूटो, पृथ्वी जैसा होता तो उसके ठोस हिस्से दिखाई देते - जो कुछ स्थानों पर हल्के और अन्य पर गहरे रंग के होते। और ग्रह के घूमते समय उसके हल्के और गहरे हिस्सों बारी-बारी से प्रकाश में जुगनू जैसे टिमटिमाते।

1954 में कैनेडियन खगोलशास्त्री राबर्ट हार्डी और उसके साथी मेरले वाल्कर ने प्लूटो की चमक को बहुत शुद्धता से मापा और वाकई में पाया कि उसकी चमक नियमित रूप से बदलती रहती थी। चमक में नियमित बदल से उन्होंने गणना की कि प्लूटो हर 6.4 पृथ्वी दिनों में एक चक्कर लगाता है।

पर प्लूटो कितना बड़ा था?

किसी ग्रह का माप जानने का एक तरीका है कि आप उसे किसी शक्तिशाली टेलिस्कोप से देखें जिसमें आवर्धन के बाद वो एक बड़ी गेंद जैसा

दिखे। इस गेंद के व्यास को नापें। आवर्धन (मैग्निफिकेशन) और ग्रह की दूरी पता होने से उसका व्यास ज्ञात किया जा सकता है।

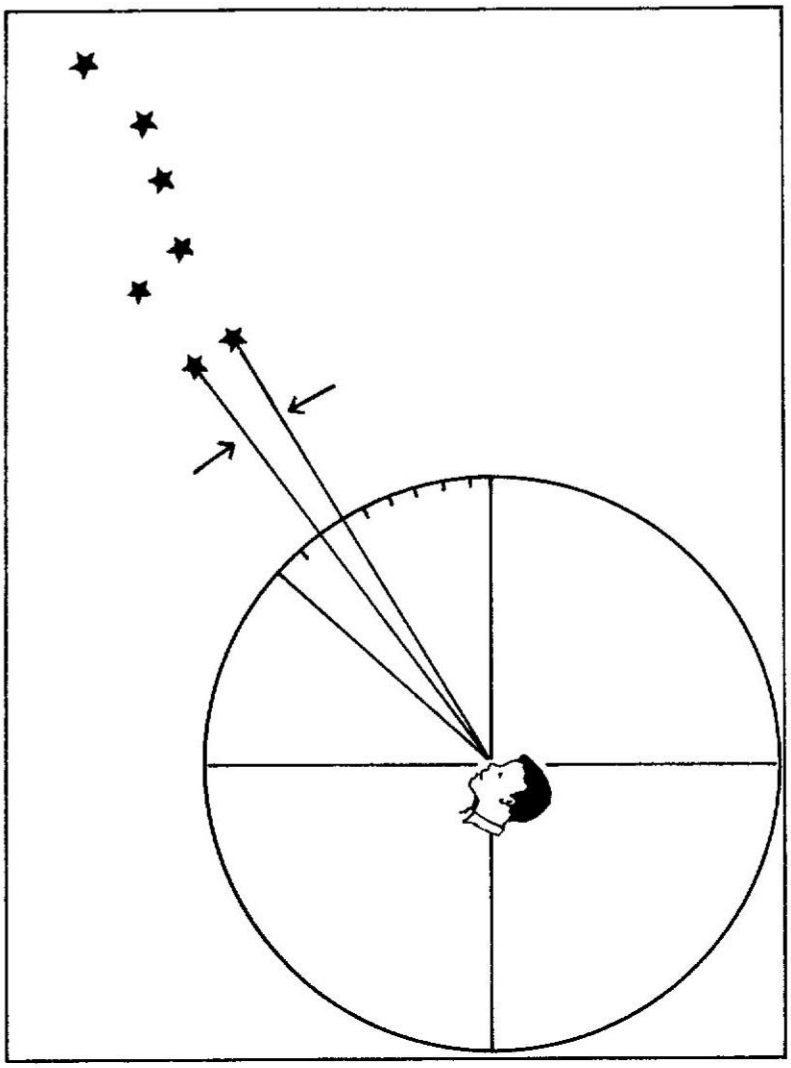

पूरे आकाश को कोणीय माप द्वारा 360-डिग्री में बांटा गया है। हर डिग्री, 60-मिनट में और हर मिनट 60-सेकंड के वृत्त-चाप में बंटा है। इनकी मदद से किसी भी आकाशीय पिंड का आकार मापा जा सकता है। 1950 में जेरर्ड कौयपर ने प्लूटो का व्यास 0.23-सेकंड मापा।

किसी भी गेंद (गोले) का व्यास उसका कोण माप कर पता किया जा सकता है। इसके लिए पूरे आकाश को 360-डिग्री में बांटा गया है। हरेक डिग्री, 60-मिनटों के वृत्त-चाप (आर्क) में बंटी है और हर मिनट 60-सेकंड में के वृत्त-चाप में बंटा है। इस हिसाब से सूर्य का व्यास 32-मिनट के वृत्त-चाप है, यानि 1/2-डिग्री आर्क से थोड़ा अधिक। इसका मतलब यह है कि अगर आप

सूर्य के माप के 675 गोलों को एक-दूसरे से सटा कर रखें तो वे पूरे आकाश को एक इंद्रधनुष जैसे ढकेंगे।

जब शुक्र ग्रह पृथ्वी के सबसे करीब होता है तो उसका व्यास 1-मिनट आर्क का होता है। इसका मतलब है कि शुक्र के 32-बिन्दु सूर्य की चौड़ाई को ढंक देंगे। दूर स्थित नेपच्यून का व्यास 2.2-सेकंड के वृत्त-चाप का है। इसका मतलब नेपच्यून के 27-गोले शुक्र ग्रह की चौड़ाई को ढंक देंगे।

'पेरिहीलियन' के समय प्लूटो पृथ्वी के सबसे नजदीक होता है। अगर वो पृथ्वी के आकार का होता तो 'पेरिहीलियन' के समय उसकी चौड़ाई 0.57-सेकंड के वृत्त-चाप की होती जो नेपच्यून की चौड़ाई की 1/4 होती।

अब हमें प्लूटो के बिम्ब का थोड़ा आवर्धन करना पड़ेगा। इससे हम उसके व्यास को जान पाएंगे।

इस कार्य को डच-अमरीकी खगोलशास्त्री जेरार्ड पीटर कौयपर (1905-1973) ने किया। कौयपर सौर-मंडल में दूर-स्थित पिंडों की गणना करने के विशेषज्ञ थे। उन्होंने प्रथम बार शनि के सबसे बड़े उपग्रह - टाईटन पर वातावरण दिखाया था। 1948 में उन्होंने यूरैनस के पांचवे उपग्रह को खोजा और उसे 'मिरैंडा' का नाम दिया। और 1949 में उन्होंने नेपच्यून के दूसरे उपग्रह को खोजा और उसे नाम दिया 'नीरिइड'।

1950 में कौयपर ने माउंट पैलामोर स्थित दुनिया के सबसे सर्वश्रेष्ठ 200-इंच टेलिस्काप का उपयोग कर पहली बार प्लूटो को एक गेंद के रूप में देखा। प्लूटो को स्पष्ट देख पाना फिर भी मुश्किल था क्योंकि वो बहुत छोटा था और लगातार टिमटिमा रहा था। पृथ्वी के वातावरण में तापमान में अंतर प्रकाश किरणों को कुछ मोड़ देता है। उसी से तारे टिमटिमाते हैं। टिमटिमाने के कारण प्लूटो की धुंधली गेंद को मापना कठिन था।

कौयपर ने भरपूर कोशिश की और टेलिस्कोप के आवर्धन को ध्यान में रखकर उसने प्लूटो का व्यास 0.23-सेकंड मापा। यह पृथ्वी के नाप का लगभग आधा था। इससे कौयपर इस निर्णय पर पहुंचा कि प्लूटो का व्यास किसी भी

हालत में 3800-मील से ज्यादा का नहीं हो सकता था और प्लूटो आकार में मंगल ग्रह से कुछ छोटा था।

प्लूटो का व्यास मापने का कोई बेहतर तरीका चाहिए था जिससे टिमटिमाने की समस्या से छुटकारा मिल सके।

अपनी कक्षा में यात्रा के दौरान कभी-कभार प्लूटो किसी धुंधले तारे के पास से होकर गुजरता था। अगर प्लूटो एकदम तारे के सामने होता तब एक तरह का ग्रहण होता तो तारा कुछ समय के लिए नहीं दिखता। इस पर टिमटिमाने का प्रभाव खत्म हो जाता क्योंकि प्लूटो और तारा दोनों एक ही स्थान पर थे और दोनों पर एक ही परिस्थितियां लागू होती थीं।

ग्रहण (ओकलटेशन) का समय दो बातों पर निर्भर करता। पहले, प्लूटो की स्पीड क्या थी? क्या वो तारे का केवल कुछ हिस्सा ढंक पा रहा था या उसे पूरी तरह से ढंक रहा था। दूसरी बात, ग्रहण कितनी काल तक रहेगा यह उस तारे की चौड़ाई पर निर्भर करता।

28 अप्रैल 1965 को प्लूटो लियो नक्षत्र के एक धुंधले तारे के पास से गुजर रहा था। अगर प्लूटो, पृथ्वी जितना, या फिर मंगल जितना भी बड़ा होता तो उसने उस तारे को जरूर ढंका होता। परन्तु उसने वो नहीं करा। इसका मतलब था

कि वो इतना बड़ा नहों था, शायद वो मंगल जितना बड़ा भी नहीं था। इससे स्पष्ट हुआ कि प्लूटो का व्यास 3600-मील से भी कम था।

5. चैरोन

प्लूटो के असली माप की गुत्थी अकस्मात रूप से जून 1978 में अमरीकी खगोलशास्त्री जेम्स क्रिस्टी ने सुलझाई।

वो फ्लैगस्टाफ स्थित नौसेना-वेधशाला के 61-इंच टेलिस्कोप से लिए प्लूटो के बेहतरीन फोटोग्राफ्स को देख रहा था। वो फोटो बहुत ऊंचाई से लिए गए थे इसलिए वातावरण द्वारा प्रकाश के टिमटिमाने से वे अधिक विकृत नहीं हुए थे।

क्रिस्टी ने फोटोग्राफ्स को बड़ा कर ऊंचे आवर्धन में देखा और उससे उसे लगा कि प्लूटो के ऊपर कोई घूमड़ है। कहीं ऐसा तो नहीं कि फोटो लेते समय टेलिस्कोप थोड़ा हिल गया हो? पर उस हालत में बाकी तारे भी छोटे रेखाओं जैसे दिखते। पर वे सभी बिन्दु थे। मतलब टेलिस्कोप नहीं हिला था।

क्रिस्टी ने बाकी फोटोग्राफ्स को भी बड़ा करके देखा और हरेक में उसे प्लूटो पर घूमड़ दिखा। क्रिस्टी को घूमड़ भिन्न फोटोग्राफ्स पर अलग-अलग स्थानों पर दिखा। उसके बाद क्रिस्टी ने प्लूटो के बहुत पुराने फोटोग्राफ्स का अध्ययन किया। उनमें से कुछ तो आठ वर्ष पुराने थे। उन्हें देखकर क्रिस्टी को लगा कि घूमड़ प्लूटो के चारों ओर 6.4 दिनों के 'पीरियड' से चक्कर लगा रहा था।

क्या प्लूटो पर कोई पहाड़ था अथवा उसका कोई उपग्रह था? क्रिस्टी को लगा वो प्लूटो का उपग्रह ही होगा और उसकी पुष्टि 1980 में हुई। तब फ्रेंच खगोलशास्त्री एंतोन लेबरी हवाई स्थित मौना कुआ पर काम कर रहे थे। उन्होंने 'स्पेकिल इनफेरोमीटरी' का उपयोग किया। इस तकनीक से प्लूटो एक बिन्दियों वाले नमूने के रूप में उभरा। पर उसमें दो नमूने थे - एक छोटा, दूसरा बड़ा

और वो किसी भी रूप में एक-दूसरे से जुड़े नहीं थे। इससे प्लूटो के उपग्रह की बात साफ हुई।

क्रिस्टी ने प्लूटो के उपग्रह का नाम 'चैरान' रखा। प्राचीन मिथक में चैरान एक नाविक का नाम था जो मृत आत्माओं को स्टिक्स नदी को पार कर प्लूटो के राजभवन हैडिस में लेकर जाता था। शायद प्लूटो की पत्नी 'परसीफोनी' का नाम ज्यादा उपयुक्त होता। क्रस्टी की पत्नी का नाम था चारलेन और वो अपनी पत्नी के पहले चार अक्षरों का उपयोग करना चाहता था। इसीलिए उसने प्लूटो के उपग्रह का नाम चैरान रखा।

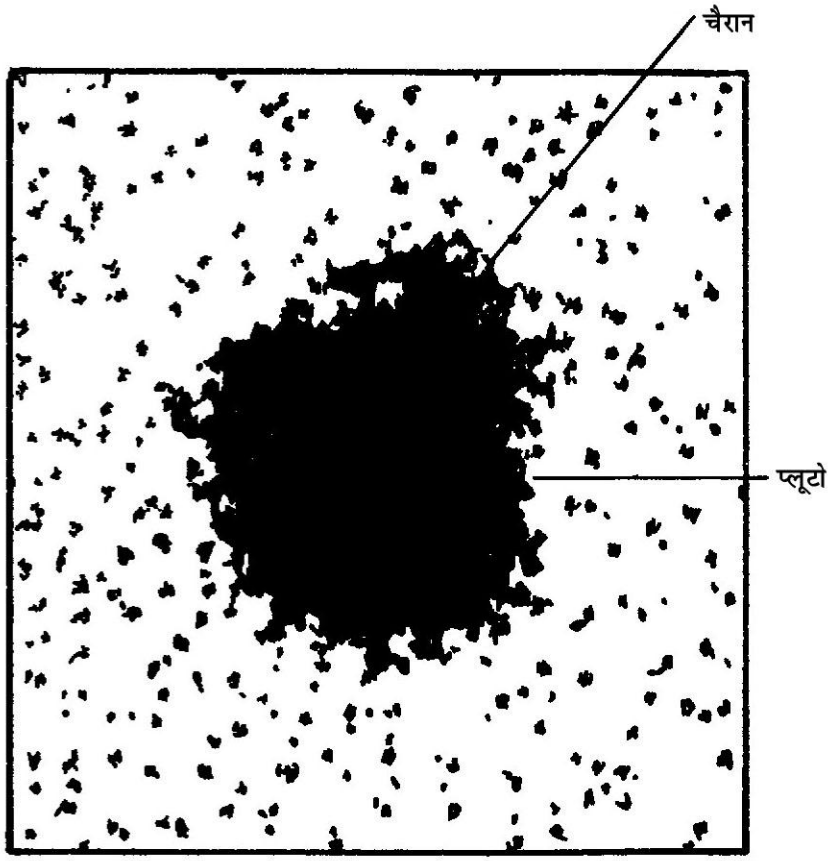

1978 में जेम्स क्रिस्टी ने प्लूटो के चंद्रमा की खोज की। यहां पर चंद्रमा, प्लूटो पर एक घूमड़ जैसा दिख रहा है। प्लूटो के चंद्रमा - चैरान की खोज के बाद क्रिस्टी प्लूटो का भार भी बारीकी से ज्ञात कर पाया।

1980 में प्लूटो एक अन्य तारे के पास से गुजरा। पृथ्वी से देखने पर ऐसा लगा जैसे प्लूटो तारे के पास से गुजरा हो पर 'चैरान' तारे के सामने से गुजरा।

और इस नजारे को दक्षिण अफ्रीका स्थित एक वेधशाला से खगोलशास्त्री ए आर वाकर ने देखा। तारा 50-सेकंड के लिए अदृश्य हो गया और उससे चैरान का व्यास 730-मील स्थापित हुआ।

प्लूटो के चंद्रमा चैरान की खोज के पश्चात प्लूटो का भार भी शुद्धता से जाना जा सका। अगर कोई ग्रह-उपग्रह की जोड़ी हो और आपको उनके बीच की दूरी और उपग्रह के ग्रह का चक्कर लगाने का समय मालूम हो तो फिर आप ग्रह-उपग्रह दोनों का इकट्ठा भार ज्ञात कर सकते हैं। अगर आपको दोनों की चौड़ाई पता हो और अगर वा दोनों समान पदार्थ के बने हों तो आप अलग-अलग भार भी निकाल सकते हैं।

चैरान और प्लूटो के बीच की दूरी 12,205-मील थी। यह पृथ्वी और चंद्रमा के बीच की दूरी की 1/20 है। इसलिए इसमें कोई अचरज की बात नहीं है कि इतने दूर स्थित प्लूटो का उपग्रह हमें पचास सालों में कभी दिखाई नहीं दिया। अगर प्लूटो पेरिहिलियन पर न होता तो शायद खगोलशास्त्रियों ने उसे भी अनदेखा किया होता।

क्योंकि चैरान प्लूटो का चक्कर 6.4 दिनों में लगाता था उससे प्लूटो का भार ज्ञात किया गया। प्लूटो का भार पृथ्वी का 1/455 था, और हमारे चंद्रमा का 1/6 था। वास्तव में प्लूटो एक बहुत छोटा ग्रह था और इसलिए उसके धुंधलेपन पर हमें कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए।

अब हमें प्लूटो का भार तो मालूम पड़ गया, पर उसका व्यास अभी भी नहीं पता था। वो किस पदार्थ का बना था, व्यास काफी कुछ उस पर निर्भर करता। मिसाल के लिए समान भार की लकड़ी की गेंद, लोहे की गेंद की तुलना में बहुत बड़ी होगी क्योंकि लोहे का घनत्व लकड़ी से कहीं अधिक होता है।

उसी समय खगोलशास्त्रियों की अचानक लाटरी खुल गई - तकदीर खुल गई। चैरान, प्लूटो के चारों ओर एक विशिष्ट तरीके से घूमता है। पेरिहिलयन के समय 5-साल तक चैरान, प्लूटो के सामने से उत्तर से दक्षिण तक जाता है और फिर 5-साल दक्षिण से उत्तर तक प्लूटो के पीछे जाता है। चैरान की खोज के

मात्र सात साल बाद उसके ग्रहणों की यह श्रृंखला 1985 में शुरू हुई और 1990 में उन ग्रहणों का अंत हुआ। अगर चैरान की खोज 12 वर्ष बाद हुई होती तो खगोलशास्त्री उसके ग्रहणों को बिल्कुल नहीं देख पाते।

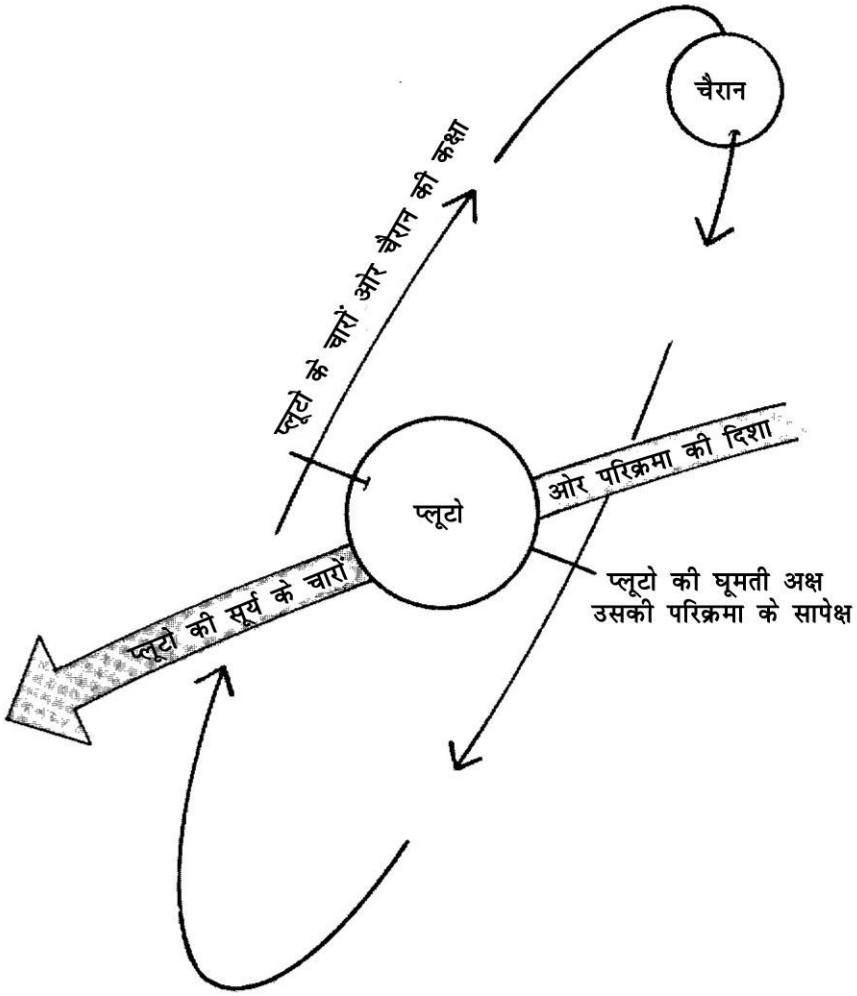

चैरान और प्लूटो की कक्षाओं के बीच का रिश्ता, और प्लूटो की सूर्य के चारों ओर परिक्रमा। 1985 से 1990 तक जब प्लूटो सूर्य के सबसे करीब था तब पृथ्वी के दर्शक चैरान द्वारा प्लूटो को ढंकना देख सकते थे।

चैरान के ग्रहण बहुत महत्वपूर्ण थे क्योंकि खगोलशास्त्री उनसे प्लूटो का व्यास माप पाए। इसके लिए उन्होंने चैरान को प्लूटो को पार करने में कितना समय लगा, या फिर वो प्लूटो के पीछे कितनी देर छिपा रहा यह जानना जरूरी था। यह बिल्कुल एक तारे के ग्रहण जैसा था जिसका पीरियड 6.4 दिनों का था।

इस गणना से पता चला कि प्लूटो का व्यास मात्र 1430-मील का था, यानि पृथ्वी के चंद्रमा का दो-तिहाई। यह लोगों की कल्पना और सोच से बहुत कम था। चैरान का व्यास 740-मील का है यानि प्लूटो का आधा। चैरान का भार प्लूटो का 1/7 था।

प्लूटो और चैरान की जोड़ी दो कारणों से बहुत रोचक है। पहले तो जब दो पिंड एक-दूसरे की परिक्रमा लगाते हैं तो बड़े पिंड के गरुत्वाकर्षण बल के कारण छोटे पिंड का घूमना धीमे हो जाता है। यह जारी रहता है और अंत में छोटा पिंड हमेशा बड़े पिंड के मुंह के एक ओर ही रहता है। हमारा चंद्रमा भी हमेशा पृथ्वी के मुंह के एक ओर ही रहता है।

इसी प्रकार चैरान भी प्लूटो के मुंह के एक ओर हो रहता है। पर क्योंकि प्लूटो बहुत छोटा है इसलिए वो भी धीमा पड़ रहा है। इसलिए प्लूटो का भी एक पक्ष ही चैरान की ओर रहता है। जब चैरान, प्लूटो की परिक्रमा लगाता है और प्लूटो अपने अक्ष पर घूमता है तो यह काम दोनों कदम-से-कदम मिला कर करते हैं। हमारे सौर-मंडल में इस प्रकार यह एकमात्र विशेष केस है।

दूसरा, चैरान का भार है। सामान्य तौर पर उपग्रह जिस ग्रह की परिक्रमा करते हैं वे उससे बहुत छोटे होते हैं। चैरान की खोज से पहले जिस उपग्रह का अपने ग्रह की तुलना में सबसे अधिक भार था वो था पृथ्वी का चंद्रमा। चंद्रमा का भार पृथ्वी के भार का लगभग 1/80 होता है। और किसी भी उपग्रह का अपने ग्रह की तुलना में इतना अधिक भार नहीं है। कुछ खगोलशास्त्री तो चैरान की खोज से पहले पृथ्वी-चंद्रमा को दोहरा-ग्रह (डबल-प्लैनिट) मानते थे।

क्योंकि चैरान का भार प्लूटो का 1/7 है इसलिए पृथ्वी-चंद्रमा से पहले प्लूटो-चैरान को डबल-प्लैनिट का खिताब मिलना चाहिए।

ग्रहण के समय जो प्रकाश प्लूटो और चैरान प्रतिबिम्बित करते हैं उनसे खगोलशास्त्री उनके बारे में अधिक जान पाए हैं। जब चैरान प्लूटो के पीछे होता है तो उस समय हमे केवल प्लूटो द्वारा प्रतिबिम्बित प्रकाश दिखाई देता है। और जब चैरान प्लूटो के सामने आता है तो हमें दोनों का प्रतिबिम्बित प्रकाश दिखाई

देता है। इसमें से अगर हम प्लूटो के प्रकाश को घटा दें तो फिर चैरान द्वारा प्रतिबिम्बित प्रकाश मालूम पड़ जाएगा।

चित्रकार की कल्पना - प्लूटो की ठंडी जमी मीथेन की सतह से चैरान।

इस प्रतिबिम्बित प्रकाश से खगोलशास्त्रियों को 1987 तक लगा कि प्लूटो की सतह पर भारी तादाद में मीथेन होगी। मीथेन वही पदार्थ है जिसे हम पृथ्वी पर प्राकृतिक गैस जैसे उपयोग करते हैं। मीथेन बहुत कम तापमान पर ठोस बनता है इसलिए चाहें प्लूटो कितना भी ठंडा क्यों न हो वहां फिर भी काफो मीथेन, गैस की स्थिति में होगी। प्लूटो का मीथेन वातावरण पृथ्वी की तुलना में 1/900-गुना विरल और मंगल की तुलना में 1/10-गुना विरल है। प्लूटो ध्रुवों पर थोड़ा हल्का है क्योंकि वहां भूमध्य-रेखा (इक्वेटर) की तुलना में अधिक मीथेन ठंडी होकर जमती है।

प्लूटो की सतह बर्फ जैसी ठोस मीथेन से ठंकी होती है इसीलिए अपने आकार के किसी भी अन्य ग्रह की अपेक्षा प्लूटो सूर्य के प्रकाश को अधिक प्रतिबिम्बित करता है। अगर वो पत्थर का बना होता तो वो बहुत कम प्रकाश प्रतिबिम्बित करता और अधिक धुंधला दिखता। फिर उसे खोज पाना और मुश्किल होता।

चैरान की प्रतिबिम्बित रोशनी प्लूटो से भिन्न है। क्योंकि चैरान, प्लूटो से छोटा है इसलिए उसका गुरुत्वाकर्षण बल भी कम है। इसलिए वो मीथेन को पकड़कर और खींचकर नहीं रख पाया। उसमें जो भी मीथेन थी वो कब की उड़ गई होगी। चैरान पर बस बर्फ के रूप में पानी ही बचा है। चैरान के निम्न तापमान पर पानी का भाप बनकर उड़ना असम्भव है। इसलिए पानी वहां टिका रहता है।

इसके परिणाम स्वरूप जहां प्लूटो की सतह ठोस मीथेन से ठंकी है वहीं चैरान की सतरह बर्फ के रूप में पानी से ठंकी है। चैरान का अपना कोई वातावरण नहीं है जबकि प्लूटो का मीथेनयुक्त वातावरण इतना अधिक खिंचा है कि वो उसकी बाहरी तहें चैरान के आगे तक जाती हैं। इसलिए चैरान अपनी परिक्रमा प्लूटो के बादल में लगाने को मजबूर है।

6. प्लूटो के आगे

प्लूटो क्योंकि इतना धुंधला था इसलिए उसकी खोज का खगोलशास्त्रियों ने बहुत भाग्यशाली माना। प्लूटो का आकार बहुत छोटा था और यूरैनस के गुरुत्वाकर्षण पर उसका अधिक असर होना सम्भव नहीं था।

प्लूटो लगभग उसी स्थान पर मिला जहां लावेल ने एक दूर-दराज ग्रह के होने की भविष्यवाणी की थी। पर दरअसल लावेल प्लूटो की तलाश नहीं कर रहा था। इत्तिफाक से प्लूटो उसी स्थान पर निकला।

पर अगर यूरैनस की कक्षा में त्रुटियों को समझाना हो तो उसके लिए फिर कहीं प्लूटो के भी आगे कोई दसवां ग्रह होगा। और यूरैनस के गुरुत्व पर कुछ असर डालने के लिए उस ग्रह का बड़ा होना अनिवार्य होगा। यह ग्रह, प्लूटो से जितना दूर होगा उसे उतना ही आकार में बड़ा होना होगा।

अगर वो नया ग्रह प्लूटो से भी दूर होगा तो उसका आकार बड़ा होना अनिवार्य होगा और वो प्लूटो से कहीं अधिक चमकदार होगा इसलिए उसे खोजना भी ज्यादा आसान होगा।

पर वा ग्रह कहां था?

टामबौग जिसने प्लूटो खोजा उसे लगा था कि प्लूटो लावेल का 'ग्रह-एक्स' नहीं था। इसलिए टामबौग ने 'ब्लिंक कौम्प्रेटोर' को उसके बाद भी सालों उपयोग किया। 1943 तक वो 45-मिलियन तारों का परीक्षण कर चुका था। इस दौरान उसे सौर-मंडल के बाहरी हिस्सों में अन्य कई प्रकार के पिंड मिले। सौर-मंडल के अंदर उसे एक धूमकेतू और 775 एस्टेराइड्स मिलीं जिन्हें पहले कभी नहीं देखा गया था। पर उसे कोई नया ग्रह नहीं मिला।

अगर दसवां ग्रह नेपच्यून के आकार का कोई ग्रह होता तो टामबौग उसे 4360-करोड़ मील दूर से भी पहचान जाता। यह दूरी प्लूटो की सूर्य से औसतन दूरी से 12-गुना अधिक होती। अगर नया ग्रह नेपच्यून का एक-तिहाई होता और प्लूटो से दूर भी होता तो भी टामबौग उसे पहचान जाता।

चौदह साल के अथक परिश्रम के बाद टामबौग इस नतीजे पर पहुंचा कि सूर्य से 550-करोड मील दूर और कोई नया ग्रह नहीं था। और अगर इससे भी दूर कोई ग्रह होगा तो उसका यूरैनस और नेपच्यून की कक्षाओं पर अधिक प्रभाव नहीं होगा।

पर बहुत से खगोलशास्त्री टामबौग के मत से सहमत नहीं थे। यह भी सम्भव है कि ग्रह दिखने के बाद भी पहचाना न गया हो। याद करें कि हुमासन ने दो बार प्लूटो की फोटो ली थीं पर एक बार पास के तारे की दखल और दूसरी बार तकनीकी गलती की वजह से वो प्लूटो को पहचान नहीं पाया था।

और अगर वहां पर कोई ग्रह नहीं है तो फिर यूरैनस की कक्षा में त्रुटि कैसे समझें? इसके अलावा क्योंकि अब नेपच्यून भी अपनी कक्षा में काफी आगे बढ़ा है तो उसकी कक्षा में भी त्रुटियां दिखाई दे रही हैं। इन्हें कैसे समझाया जाए?

खगोलशास्त्री कौन्ली पावेल ने इस बीच यूरैनस की कक्षा में त्रुटि की दुबारा गणना की। उसे लगा कि 1910 के बाद यूरैनस की कक्षा के बहुत शुद्ध आंकड़ें उपलब्ध हैं और उससे पहले के अवलोकनों को अनदेखा करना चाहिए। उसने नए अवलोकनों के आधार पर गणना की और उसे लगा कि दसवां ग्रह होगा और उसका भार पृथ्वी से 3-गुना अधिक होगा और वो सूर्य से 565-करोड़ मील दूर होगा। नया ग्रह हर 494-साल में सूर्य की परिक्रमा लगाएगा। नया ग्रह आकाश के किस हिस्से में पाया जाएगा उसकी भविष्यवाणी भी पावेल ने की।

1987 में पावेल ने लावेल वेधशाला के वैज्ञानिकों से नए ग्रह को खोजने की अपील की। उन्होंने बहुत प्रयास किया परन्तु नया ग्रह नहीं मिला।

अगर नया ग्रह होगा भी तो भी उसकी कक्षा इतनी विकृत होगी कि उसे खोजना मुश्किल होगा। दूसरे ग्रहों की अपेक्षा उसकी कक्षा बहुत झुकी और टेढ़ी होगी। और जब वो पेरिहीलियन पर पहुंचता तभी शायद वो बाहरी ग्रहों पर कुछ प्रभाव डालता। पिछली कुछ शताब्दियों में वो शायद अपने पेरिहीलियन पर पहुंचा हो और उसी के कारण हम नेपच्यून और प्लूटो ग्रहों को खोज पाए हों। पर शायद वो अब अपनी कक्षा में आगे बढ़ गया हो और फिर 800 साल बाद ही दुबारा पेरिहीलियन पर लौटे।

वर्तमान में बेहतर और आधुनिक टेलिस्कोप हैं। और तमाम रॉकेट्स आर प्रोब्स को अंतरिक्ष में भेजा गया है। शायद वो कभी नए ग्रह को खोज पाएं। शायद हम

धूमकेतुओं का भी गहरा अध्ययन कर पाएं - खासकर जिनकी कक्षाएं यूरैनस और नेपच्यून से भी दूर जाती हैं। उनकी कक्षाओं में त्रुटि भी दसवें ग्रह के कारण हो सकती है। कुछ रॉकेट्स और प्रोब्स अब यूरैनस और नेपच्यून से दूर जा चुके

हैं और उनकी कक्षाओं में त्रुटियों को भी दसवें ग्रह के मत्थे मढ़ा जा सकता है। पर अभी तक इसके कोई ठोस प्रमाण नहीं मिले हैं।

जब खगोलशास्त्री उसकी कोई उम्मीद न कर रहे हों तब शायद अचानक प्लूटा और चैरान जैसे नए पिंड मिल जाएं। पर शायद वो बहुत सालों तक न मिले।

ऐसा भी सम्भव है कि वो कल ही मिल जाएं।

अंत